International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 16-11-2020; Accepted: 01-12-2020; Published: 16-12-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 6; 2020; Page No. 161-163

शब्दब्रह्म की शक्तियाँः शब्दशक्तियाँ

डॉ. आशा पाण्डेय
असोसिएट प्रोफेसर, आत्मा राम सनातन धर्म कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
भाषा हमारे अंतर्निहित विचारों, भावों को अभिव्यक्त करने और उन्हें संप्रेषित करने का सशक्त माध्यम हैं। मानव इस अभिव्यक्ति और संप्रेषण के लिए शब्दों का दामन थामता है। शब्द भाषा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और सार्थक इकाई है। शास्त्रों में शब्द को 'ब्रह्म' की उपाधि दी गई है। वास्तव में शब्द ब्रह्म ही हैं, क्योंकि किसी पर प्रेम बरसाना हो या किसी में इतनी कट्टर शत्रुता उत्पन्न करनी हो कि परम मित्र भी एक दूसरे की जान लेने को कमर कस लें, बस दो–तीन शब्दों की घुसपैठ पर्याप्त होती है। इसी शब्द–ब्रह्म का प्रयोग करके साहित्यकार आपदाओं–विपदाओं के बड़े–बड़े समुद्र पारकर मानवता की रक्षा का दायित्व वहन करता है।। आचार्य भामह ने शब्द का परिचय देते हुए कहा है – "अर्थ–प्रतीति के लिए जिसका उच्चारण किया जाए, उसे शब्द कहा जाता है।"[1] शब्द का मूल स्वभाव है अर्थ–बोध कराना। शब्द और अर्थ का संबंध शाश्वत और नित्य है। 'वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपतये। जगतः पितरौ वंदे पार्वतीपरमेश्वरौ।।'[2]– शब्द और अर्थ एक दूसरे से अर्द्धनारीश्वर शिव और पार्वती की तरह जुड़े हुए रहते हैं। शब्द के बिना अर्थ और अर्थविहीन शब्द का कोई महत्त्व नहीं होता है। "गिरा अरथ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।"[3] – अर्थात् वाणी (शब्द) और अर्थ का संबंध जल और वीचि (लहर) के समान है, जो एक दूसरे से अलग नहीं है। शब्द और अर्थ के इस संबंध का अध्ययन व्याकरण के अंतर्गत किया जाता है और साहित्य में साहित्यशास्त्र (काव्यशास्त्र) के अंतर्गत। इस शोधलेख में शब्द के अर्थ को प्रकट करने वाली प्रमुख तीन शक्तियों का भेदोपभेद के साथ निरूपण किया गया है।

मूलशब्द: प्रतीति, वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ, प्रयोजन, रूढ़ि, गौणी, शुद्धा, उपादान।

प्रस्तावना

साहित्य का भी व्याकरण है जिसे 'काव्यशास्त्र' कहा जाता है। सामान्य–भाषा से साहित्य–भाषा विभेद रखती है। यहाँ प्रयुक्त भाषा में शब्दों के संबंध केवल प्रकृति–प्रत्यय तक सीमित नहीं रहते हैं। साहित्यकार अर्थ को मनोहारी, आकर्षक, विशिष्ट और संप्रेषणीय बनाने के लिए शब्दों का प्रयोग विशेष प्रकार से करता है। शब्द के द्वारा सदैव एक ही अर्थ की प्रतीत नहीं होती है। एक ही शब्द प्रयोग–भिन्नता के आधार पर भिन्न अर्थ का वाचक होता है। जिस शक्ति से अंतर्निहित अर्थ प्रकट होता है, उसे शब्दशक्ति कहते हैं। अर्थात् शब्द में अर्थ सूचित कराने की जो क्षमता होती है, उसे शब्दशक्ति कहते हैं। काव्यशास्त्र के अनुसार शब्दशक्तियाँ तीन हैं : 1. अभिधा, 2. लक्षणा और 3. व्यंजना।

1. 'हाथी' शब्द सुनते ही हम उसका अर्थ एक विशेष प्रकार के जीव से लेते है, कद्दू या गदा से नहीं। अर्थात् यहाँ शब्द के सामान्य, मूल या लोकप्रचलित अर्थ की ही प्रतीति हो रही है। शब्द की जिस शक्ति से उसके प्रसिद्ध, मुख्य अथवा निश्चित अर्थ का ज्ञान होता है उसे अभिधा शब्दशक्ति कहते हैं।[4] यह शक्ति शब्द के उस अर्थ को सूचित करती है, जो कोश या व्याकरण से प्राप्त होता है, जो पूर्व संचित ज्ञान, आप्त वाक्य, परंपरा और व्यवहार से व्यक्ति सीखता है। इस शब्द को 'वाचक' तथा इस अर्थ को 'वाच्यार्थ', 'मुख्यार्थ या 'अभिधेयार्थ' कहते हैं। अभिधा शब्दशक्ति शब्द के उस अर्थ को बताती है, जिसे साक्षात् संकेतित[5] अर्थ कहते हैं, इसे समझने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती है, 'हाथी' से जीव विशेष का ही बोध होता है। सभी वस्तुओं, प्राणियों, स्थानों आदि के नाम; सभी मूल क्रियाएँ और उनसे बने शब्द और सभी गुणवाचक शब्द वाचक शब्द हैं।
2. 'मुकेश हाथी है।' – यदि कहा जाए तो निश्चित तौर पर वाच्यार्थ द्वारा अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाएगा, क्योंकि मुकेश तो मनुष्य है हाथी नहीं। यहाँ 'मुकेश हाथी है' का अर्थ होगा – मुकेश अत्यधिक मोटा है। लेकिन विश्व के सारे शबदकोश छान डालने पर भी हाथी का अर्थ मोटा नहीं मिलेगा। तात्पर्य यह कि अभिधा द्वारा अर्थ स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। उसमें बाधा उत्पन्न हो रही है। किसी प्रयोजन अथवा रूढ़ि के कारण मुख्य अर्थ को दबाकर उससे संबद्ध दूसरे अर्थ को प्रकट करने वाली शक्ति लक्षणा कहलाती है। अर्थात् मुख्यार्थ में बाधा उत्पन्न होने पर प्रयोजन या रूढ़ि के द्वारा शब्द की जिस शक्ति से मुख्यार्थ से संबंधित अन्य अर्थ का बोध होता है, उसे लक्षणा शब्दशक्ति कहते हैं।[6] इस शक्ति से जिस अर्थ का बोध होता है उस से लक्ष्यार्थ कहते हैं और उस शब्द को लक्षक या लाक्षणिक शब्द कहते हैं।

लक्षणा में चार बातें आवश्यक होती हैं

1. मुख्यार्थ में बाधा अर्थात् मुख्य अर्थ ग्रहण करने में बाधा होती है क्योंकि वह उपयुक्त नहीं लगता है।
2. मुख्य अर्थ से भिन्न अर्थ की प्रतीति।
3. अन्य अर्थ का मुख्य अर्थ से संबंधित होना।
4. प्राप्त अन्य अर्थ का रूढ़ि या प्रयोजन के आधार पर लगाया जाना। अर्थात् अन्य अर्थ के ग्रहण करने का या तो कोई विशेष प्रयोजन हो अथवा इस अर्थ को स्वीकार करने में कोई रूढ़ि या परंपरागत धारणा काम कर रही हो।

रूढ़ि और प्रयोजन के आधार पर लक्षणा के दो भेद हैं: (क) रूढ़ा लक्षणा (ख) प्रयोजनवती लक्षणा।

(क) रुढ़ि का अर्थ है प्रचलन, रीति या प्राचीन परंपरा। जहाँ किसी रूढ़ि या अति प्रसिद्धि के कारण कोई शब्द लक्ष्यार्थ का बोध कराता है वहाँ रूढ़ा लक्षणा होती है, उदाहरण – 'अंग्रेजों के विरुद्ध पूरा देश खड़ा हो गया।' – 'देश' शब्द स्थान विशेष के लिए प्रयुक्त होता है और वह खड़ा नहीं हो सकता है। यहाँ देश का अर्थ 'देशवासी' लिया गया है। यहाँ मुख्यार्थ में बाधा

उत्पन्न होने पर उससे संबंधित रूढ़ अर्थ लिया गया है। प्राचीन प्रयोग से ही 'देश' का अर्थ 'देशवासी' रूढ़ होने से रूढ़ा लक्षणा है। हिन्दी के लगभग सभी मुहावरे लक्षण के उदाहरण हैं। (ख) कभी–कभी मुख्यार्थ के बाधित होने पर किसी प्रयोजन के लिए या किसी अन्य अभिप्राय विशेष से मुख्यार्थ से संबंध रखने वाला कोई अन्य अर्थ (लक्ष्यार्थ) लेना पड़ता है, जैसे ' श्यामसुंदर गऊ है।' – पर श्यामसुन्दर तो आदमी है, गऊ नहीं। 'सिधाई' के प्रयोजन से उसे गऊ कहा गया है, इसलिए गुण साम्य के आधार पर यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा है। इसमें लक्ष्यार्थ का आधार सादृश्य–संबंध, गुण साम्य अथवा समान धर्म होता है।।

वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ के आधार पर लक्षणा के दो भेद माने गए हैं – (१) गौणी लक्षणा, (२) शुद्धा लक्षणा।

जहाँ वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ में गुणों आदि के कारण सादृश्य–संबंध हो वहाँ गौणी होती है। शुद्धा में वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ में सादृश्य के अतिरिक्त कोई और संबंध – आश्रय–आश्रित, आधार–आधेय, कारण–कार्य, साहचर्य, तात्कर्म आदि होता है।

(ग) जहाँ वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ में गुणों का सादृश्य होता है तथा अर्थ रूढ़ होता है, वहाँ रूढ़ा गौणी लक्षणा होती है, उदाहरण– 'अपने अंग के जानि के जोबन–नृपति प्रबीन।' (बिहारी) – 'प्रबीन' अर्थात् प्रवीण' शब्द प्राचीनकाल में उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता था, जो वीणा बजाने में निपुण या चतुर होता था। बाद में यह शब्द उस व्यक्ति के लिए रूढ़ हो गया, जो अन्य कामों में भी चतुर या निपुण हो। यहाँ मुख्यार्थ 'निपुण वीणावादक' और लक्ष्यार्थ 'चतुर निपृति' में चातुर्य का गुण समान होने के कारण सादृश्य संबंध है, अतः 'प्रवीन' का 'चतुर' अर्थ रूढ़ा गौणी लक्षणा से ही मिला है।

(घ) जहाँ वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ में सादृश्य के अतिरिक्त कोई और संबंध – आश्रय–आश्रित, आधार–आधेय, कारण–कार्य, साहचर्य, तात्कर्म आदि होता है तथा अर्थ रूढ़ होता है, वहाँ रूढ़ा शुद्धा लक्षणा होती है। उदाहरण – 'अंग्रेजों के विरुद्ध पूरा देश खड़ा हो गया।' – यहाँ 'देश' शब्द में रूढ़ा लक्षणा है, जिसका अर्थ है 'देशवासी'। यह अर्थ प्राचीन काल से प्रचलित रूढ़ि है। मुख्यार्थ 'देश' और लक्ष्यार्थ 'देशवासी' में सादृश्य–संबंध नहीं है, यह संबंध आश्रय–आश्रित का है। अन्य उदाहरण – 'बस वाले द्वारा आवाज़ लगाना – दस रुपए सवारी' यहाँ 'सवारी' शब्द का वाच्यार्थ हैं – सवार के लिए बैठने की गाड़ी – बस आदि। पर यहाँ इस मुख्यार्थ के ग्रहण में बाधा है क्योंकि बस वाला गाड़ी के लिए आवाज़ नहीं लगा रहा है। अपितु वह सवार होने वाले लोगों को बुला रहा है यह अर्थ लक्षणा द्वारा ही संभव है मुख्यार्थ 'सवारी' और लक्ष्यार्थ 'सवार' में आधार–आधेय का संबंध है, अंतः यहाँ शुद्धा लक्षणा है। सवारी शब्द सवार के लिए रूढ़ होने के कारण यहाँ रूढ़ा शुद्धा लक्षणा है।

(ड.) जब समान गुण या समान धर्म अर्थात् सादृश्य–संबंध के आधार पर प्रयोजन से लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है, वहाँ प्रयोजनवती गौणी लक्षणा होती है। यह दो प्रकार की होती है। (1) जब किसी प्रयोजन से किसी वस्तु पर सादृश्य गुण के कारण किसी अन्य पदार्थ का आरोप करें तथा विषय और विषयी दोनों को अलग–अलग भी रखें, तब उसे प्रयोजनवती गौणी सरोपा लक्षणा कहते हैं। जैसे – "चरण–सरोज पखारन लागा" – चरण (विषय) पर सरोज (विषयी) का आरोप होने से सरोपा और सादृश्य–संबंध होने से गौणी। पैरों की कोमलता और लालिमा बताने के प्रयोजन से प्रयोजनवती। मुख्यार्थ में बाधा उत्पन्न होने पर उससे संबंधित अर्थ के कारण लक्षणा शब्दशक्ति है। (2) जब किसी प्रयोजन से किसी पदार्थ पर सादृश्य गुण के कारण किसी अन्य पदार्थ का आरोप करें परंतु विषय का उल्लेख न करें, केवल विषयी से ही काम चला लें, तब उसे प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा कहते है। जैसे – "आचार्य! देखो तो नया वह सिंह सोते से जगा।" – 'सिंह' (विषयी) ने 'अभिमन्यु' (विषय) को अपने में अध्यवसित कर रखा है। अर्थात् आरोप का आधार आरोप होने वाले अर्थ में अपनी सत्ता ही खो बैठा है। वाच्यार्थ 'सिंह' और लक्ष्यार्थ 'अभिमन्यु' में वीरता का गुण समान होने के कारण सादृश्य–संबंध से गौणी है। यहाँ अभिमन्यु की वीरता का वर्णन करना कवि का प्रयोजन है, अतः प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

(च) जब किसी प्रयोजन से वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ में सादृश्य के अतिरिक्त कोई और संबंध – आश्रय–आश्रित, आधार–आधेय, कारण–कार्य, साहचर्य, तात्कर्म आदि दिखता हो, तब वह प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा कही जाती है (1) यदि विषय पर विषयी का आरोप भी हो, तो वह प्रयोजनवती शुद्धा सरोपा लक्षणा कहलाने लगती है। जैसे – 'संतान ही सुख है।' – संतान और सुख में सादृश्य–संबंध नहीं है, कारण–कार्य संबंध है, अतः शुद्धा है। क्योंकि यहाँ सुख का प्रयोजन संतान को बताया गया है, अतः प्रयोजनवती है। संतान में सुख का आरोप होने से सरोपा है। (2) जब किसी प्रयोजन से वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ में सादृश्य से भिन्न कोई अन्य संबंध समझ में आए और विषयी में विषय का अध्यवसाय हो, तो वहाँ प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा समझना चाहिए। उदाहरण द्वारा समझिए– 'जन लोचन आनंद बसंत ब्रज–बीथिन के बीच' – यहाँ 'कृष्ण' विषय (उपमेय) का अध्यावसान (लोप) है, केवल विषयी (उपमान) 'जन लोचन आनंद' का कथन है। कृष्ण ब्रज के लोगों की आँखों को आनंद देने का कारण हैं। यहाँ 'कृष्ण' कारण और 'आनंद' कार्य का संबंध है। यहाँ कवि का प्रयोजन यह बताना है कि कृष्ण के द्वारा संसार के लोगों को आनंद प्राप्त होता है। (3) जहाँ मुख्यार्थ एकदम छूट जाता है, लक्ष्यार्थ ही लेना पड़ता है, वहाँ लक्षण लक्षणा होती है। इसे जहत्स्वार्था भी कहा जाता है। जैसे – 'आज भुजंगों से बैठे हैं वे कंचन के घड़े दबाए।'(हरिकृष्ण प्रेमी) – इस पंक्ति में 'भुजंग' शब्द का मुख्यार्थ है – सर्प। यह एकदम छूट गया है और इसका अर्थ हो गया है 'धनसंग्राहक' व्यक्ति। (4) जहाँ कहीं शब्द का मुख्यार्थ भी बना रहता है और उससे संबंधित अन्य अर्थ लक्ष्यार्थ भी सूचित होता हो। अर्थात् लक्ष्यार्थ मुख्यार्थ से अन्वित होता है। जैसे – 'भाले आए जब वहाँ, चले बाण घनघोर।' – इस पंक्ति में 'भाले' शब्द का अर्थ – भाले और उसको चलाने वाले भालाधारी सैनिक दोनों हैं। जबकि भाले का मुख्यार्थ है – जड़ पदार्थ (अस्त्र–विशेष)। वह अपने–आप कैसे चलेगा? यहाँ मुख्यार्थ में बाधा तो है पर यहाँ शब्द अपने मुख्यार्थ को छोड़ नहीं देता। इस प्रकार की लक्षणा को उपादान–लक्षणा (अजहत्स्वार्था) कहते हैं।

3. शब्द की तीसरी शक्ति है व्यंजना। शब्द की इस शक्ति द्वारा वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न अर्थ की प्रतीति होती है।[7] इससे जो अर्थ सूचित होता है उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं, और इस अर्थ का बोध कराने वाले शब्द को व्यंजक कहते हैं। वस्तुतः व्यंग्यार्थ कथित या लक्षित न होकर सूचित या व्यंजित होता है। उदाहरण – जब माँ यह कहती है कि "सुबह हो गई है।" तो बच्चे इसका अर्थ समझते है कि स्कूल जाने के लिए तैयार होना है। पति समझता है कि ऑफिस के लिए तैयार होना है, और बहू समझती है चाय–नाश्ता तैयार करना है। यह अर्थ वाच्य नहीं हो सकते, क्योंकि 'सुबह' का अर्थ स्कूल, ऑफिस या चाय–नाश्ता और 'हो गई' का अर्थ जाने के लिए तैयार होना किसी प्रकार साक्षात्–संकेत नहीं हो सकते हैं। फिर ये अर्थ लक्ष्य भी नहीं है क्योंकि लक्षणा की पहली शर्त है मुख्यार्थ में बाधा। सो 'सुबह' का जो वाच्यार्थ है, वही यहाँ भी है। कहीं कोई बाधा नहीं है। इसलिए इस अर्थ को न तो वाच्य ही कह सकते हैं न ही लक्ष्य ही। यह अर्थ व्यंग्य है। अर्थात् विशेष प्रसंग से इस की व्यंजना या प्रतीति होती है।

पहली दोनों शक्तियाँ केवल शब्दाधारित थी, व्यंजना अर्थ के बल पर भी काम करती है। इसलिए इसके दो भेद हैं – शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना। यह व्यंजना अभिधामूला भी होती है

और लक्षणामूला भी। (क) जब एक ही शब्द के अनेक साक्षात्–संकेतित अर्थ हो, अभिधा द्वारा उनमें से एक अर्थ निश्चित हो जाने पर भी अन्य कोई अद्भुत अर्थ सूचित हो, वहाँ अभिधामूला शाब्दी व्यंजना समझना चाहिए। उदाहरण – ''झूमत मतवारी झमकि बनमाली रस रूप।।" – यहाँ वर्णन 'बनमाली' अर्थात् मेघ का है। यहाँ संयोगादि प्रकरण के द्वारा मेघ अर्थ निश्चित हो गया है, किंतु अभिधामूला व्यंजना से बनमाली का अर्थ कृष्ण भी प्रतीत होता है। पर वह प्रधान नहीं है, अर्थात् मुख्यार्थ में बाधा के बिना दूसरा अर्थ भी झलकता है। यह दूसरा अर्थ व्यंजित है। यहाँ शाब्दी व्यंजना इसलिए है कि 'बनमाली' शब्द का कोई पर्यायवाची शब्द– मेघ, जलद आदि रख देने से अभीष्ट चमत्कार नष्ट हो जाता है।
(ख) जब व्यंग्यार्थ शब्द पर निर्भर न होकर अर्थ पर निर्भर हो, व्यंजक शब्द का पर्यायवाची शब्द रख देने पर भी वही व्यंग्यार्थ बना रहे। जहाँ वाच्यार्थ के बोध के तुरंत बाद व्यंग्यार्थ का बोध होता है, वहाँ अभिधामूला आर्थी व्यंजना होती है। उदाहरण –

"रे कपि कौ तू ? अक्ष को घातक, दूत बली रघुनंदन जू को।
को रघुनंदन रे ? त्रिसिरा–खर–दूषन–दूषन भूषन भू को।।
सागर कैसे तरयौ ? जस गो पद, काज कहा ? तिय चोरहि देखो।
कैसे बँधायो? जो सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो।।"
(केशवदास)

यहाँ वाच्यार्थ के बोध के तुरंत बाद व्यंग्यार्थ का बोध हो जाता है। इसका व्यंग्यार्थ है – जब राम का दूत अकेले ही अक्षकुमार को मार सकता है, समुद्र लाँघ सकता है तब उसके स्वामी राम कितने अधिक बलशाली होंगे? किंतु इससे भी अधिक चमत्कार अंतिम पंक्ति के व्यंग्यार्थ में है कि सीता को खोजते समय मेरी दृष्टि तुम्हारे भवन में सोती हुई स्त्रियों पर पड़ी इसलिये परस्त्री दर्शन के पाप से मैं बंधन में आ गया। किंतु हे रावण! तुमने तो पराई स्त्री का हरण कर लिया है, तुम्हें कितना भयंकर फल भोगना पड़ेगा।
(ग) जब लक्ष्यार्थ बोध के बाद व्यंग्यार्थ का बोध होता है, तब वह लक्षणामूला आर्थी व्यंजना कहलाती है। उदाहरण–

"सीताहरण तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहहि दसानन आइ।।" (तुलसीदास)

इस दोहे का लक्ष्यार्थ है – मैं राम रावण को कुल सहित मारकर अपना नाम सार्थक करूँगा। इसका व्यंग्यार्थ है – कि हे जटायु! सीताहरण की अपमानजनक बात पिता से मत कहना, उन्हें दुःख होगा। रावण को कुल सहित मारकर जब मैं सीता को मुक्त करा लूँगा, तब उन्हें प्रसन्नता होगी। यहाँ राम की वीरता, स्वाभिमान और कुल की मर्यादा की भावनाएँ व्यंजना शक्ति के द्वारा ही प्राप्त हो रही हैं। यदि यहाँ 'दसानन की जगह कोई अन्य पर्यायवाची शब्द रख दिया जाए तो भी अर्थ में कोई अंतर नहीं आएगा।
भावों को संप्रेयणीय बनाने के लिए शब्द सर्वोत्तम माध्यम हैं। शब्दों में निहित अर्थ–संपदा को शब्दशक्ति के माध्यम से उद्घाटित किया जा सकता है। साहित्य में अभिधा शब्दशक्ति का महत्व अपेक्षाकृत कम होता है। सादृश्य और साधर्म्य के विविध विधानों द्वारा अनुभवों की सूक्ष्मता और विस्तार को अभिव्यक्त करने की क्षमता के कारण लक्षणा का विशेष महत्व है। सर्वाधिक महत्त्व व्यंजना शब्दशक्ति का है। इसमें एक ही वाक्य से अनेक अर्थों की प्रतीति संभव है। व्यंजना शक्ति द्वारा भाषा में ऐसा विलक्षण अर्थ ध्वनित होता है जो सहृदय की कल्पना से उत्पन्न होकर आनंदप्रद समझा जाता है। व्यंजना अभिधा, लक्षणा को पीछे छोड़ भाषा में प्रयुक्त शब्दों के अप्रत्यक्ष अर्थ को व्यक्त करने में समर्थ है। व्यंजना से ध्वनित व्यंग्यार्थ के मुखरित होने पर काव्य उत्तम कहा जाता है।

संदर्भ सूची

1. भामहः काव्यालंकार 1.16
2. कालिदासः रघुवंशम्, 1.1
3. तुलसीदासः रामचरितमानस, बालकांड – दोहा 18
4. 'तंत्र संकेतितार्थस्य बोधनाद्ऽग्रिमा अभिधा।' – विश्वनाथः साहित्य दर्पण 2.4
5. साक्षात्संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचक' दृ मम्मटः काव्य प्रकाश 2.6
6. 'मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थःप्रतीयते। रूढेः प्रयोजनाद् वासी लक्षणाशक्तिरर्पिता।। – विश्वनाथ साहित्य दर्पण 2.5
7. विरतास्वभिदधाद्यासु ययाऽर्थो बोध्यते परः। सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।। – विश्वनाथः साहित्य दर्पण 2. 12